शुभ्रा

प्रभात

सेवा में,
सम्पादक
हिन्दी प्रकाशन
को
[illegible] [illegible]
सम्भ कौशिक

शुभ्रा

(साठ अभिनव गीतों का संग्रह)

रचयिता
श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

प्रकाशक
नवभारत प्रकाशन
दिल्ली–६ : पटना–४

प्रकाशक
नवभारत प्रकाशन
६०५२, सदर बाजार, दिल्ली–६
खजांची रोड, पटना–४

•

आवरण शिल्पी : श्री वीरेश्वर भट्टाचार्य

•

•

मूल्य २.५०

•

प्रथम संस्करण : १९६७

•

मुद्रक :
चन्द्रोदय प्रेस,
पटना–४

•

आवरण-मुद्रक
नालन्दा ब्लौक सेन्टर,
पटना–४

समर्पण : स्वागत : स्वगत

सन् १९६७ के प्रथम किरणोदय की पुकार सुनकर जब मेरी आँखें खुलीं तब मैंने देखा कि मुझे जीवन के ६१वें पावस से सराबोर कर देने वाला वर्ष मेरे द्वार पर खड़ा है। मैं सिहर उठा। ऐसा लगा कि अनकही प्रार्थना की तरह झुकी हुई आयु मुझे लाल-लाल लपटों में ढाल रही है और उष्णता एवं प्रकाश का शोभान्वित शब्द-चातुर्य सूर्य, लघु-लघु देवालयों के समान प्रोद्भासित तुषार-कणों को सुलगा-सा रहा है। हठात् मुझे अपनी उनसठवीं वर्षगाँठ पर लिखी कविता याद आ गई और मैं शरत् की खुली धूप में, आँगन में ईंटों के ढेर पर, बैठकर गुनगुनाने लगा

> यह जो पूरब में तुमने लाली उड़ेल दी है
> इससे मेरी साँस-साँस ने आग पकड़ ली है
> लपटों में मिलकर तिनके भी आग बन गये हैं
> नहीं दीखते, धड़कन के खग राग बन गये हैं
> ओ ओसों में दीप जलाने वाले ! यह क्या है
> मेरे वातायन पर घोषित यह किसकी ज्या है
> पल-छिन को चुपके बटोर कर कैसे गला दिया
> गीतों के टुकड़ों से सूरज निर्मित नया किया
> लहक हिमानी तरु-शिखरों की राह दे रही है
> आज सवेरे देखा, कविता नाव खे रही है
>
> (धर्मयुग, १३–११–६६)

यह कविता इसलिये याद आ गई कि इसके भोले-भाले सौन्दर्य पर रीझकर गत वर्ष मैंने मन-ही-मन संकल्प किया था कि सन् १९६७ में लिखे गये इसी कोटि के प्रथम ६० गीतों का हार पिरोकर राष्ट्र-भारती के श्रीचरणों में रखूँगा और जीवन के ६१वें पावस का स्वागत करूँगा। इस प्रकार 'शुभ्रा' षष्ठि-पूर्ति की आशा में लिखे गये गीतों का चित्राधार है।

लेकिन सन् १९६७ का आरम्भ गीतों से नहीं हुआ। भारत के गौरव गुरु गोविन्द सिंह जी की ३००वीं वर्षगाँठ के पुनीत अवसर पर १६–१–६७ को पटना में हुए अखिल भारतीय कवि-दरबार में हिन्दी का प्रतिनिधित्व करने के लिये मेरी पुकार हुई। इस अवसर के लिये मैंने जो कविता लिखी थी उसकी कुछ पंक्तियाँ

इस प्रकार हैं

पद-दलित राष्ट्र जब होता है, तब सैनिक शक्ति सुलगती है
पद-मर्दित होता जब स्वदेश, तब शक्ति शिवा की जगती है
जब स्वतंत्रता कुचली जाती, तब माले आग उगलते हैं
जब पवित्रता रौंदी जाती, तृण-तरु योद्धा बन चलते हैं
उत्सर्ग जहाँ है धर्म वहीं, अतएव करो उत्सर्ग प्राण
बोलो वीरो ! सत् श्री अकाल, माला के बदले लो कृपाण
(रचना ४–१–६७, प्रकाशित, राष्ट्रभारती : अप्रैल, १९६७)

लगभग १ लाख की निस्तब्ध-सम्मुग्ध भीड़ में जब मैं उक्त कविता का पाठ कर रहा था, मुझे ऐसा लगा कि एक बहुत बड़ा क्षण मुझे आँधी के पंखों पर बैठाकर भीम-वेग से लिये जा रहा है—एक ऐसा क्षण जो तर्क की उलझन में नहीं पड़ता। स्वयं अनिवार्य-सा दीखता है। यज्ञ-कुंड की आग को वर्तमान से धौंकता-सा। सम्पूर्ण सृष्टि को पुकारता-सा, झंकारता-सा, झकोरता-सा और विश्वास करता-सा कि

वज्र की आग से जीवन पवित्र होगा
आकाश के आँसू से जीवन निर्मल होगा
निष्ठा और भक्ति की आभा से
जीवन परिष्कृत होगा
उत्सर्ग की साँस से
जीवन का नवीकरण होगा
समरूपता की प्रार्थना में
जीवन का पुनर्जन्म होगा

और पूछता-सा, अक्षान्त्या, सावेग पूछता-सा

लेकिन कब ?
हे प्रभु ! कब ?

(१०–१–६७)

प्रकृति और सौन्दर्य के परदे में बड़ी-से-बड़ी संक्रिया नीरव, अगम्य और अगोचर रूप से चलती रहती है। छिछले झरने का बकवास हर कोई सुन लेता है। लेकिन प्रतिदिन प्रातःकाल शांत जल-तल पर कमल-पुष्प के फूट पड़ने की आहट कोई नहीं सुनता। तूफ़ान जितनी प्रचंडता से बहता और लोगों को आतंकित करता है उतनी ही शीघ्रता से उसका संताप मिट जाता है। लेकिन ओस-कण यद्यपि मृदुल-मसृण और अनसुना होता है तथापि वह परिमाण में अमित तथा प्रभाव में विशाल भू-खंडों

का जीवन माना जाता है। मैंने ११-१-६७ को लिखा

उष:काल की हवा खोलती पंकजिनी का मुख
मेरे पंखों की हिलोर पर उड़ता सौरभ-सुख
संध्या आकर गुंथ जाती है मेरी अलकों में
तारों भरा निशीथ जागता मेरी पलकों में
मैं हूं शांति-कुरंग, उछलता पर्वत-शिखरों पर
मैं प्रकाश-शावक, चुगता हूं तूफानों का स्वर

(प्रत्यय ३ : मई, १९६७)

शांति-कुरंग और प्रकाश-शावक! लेकिन उद्दाम निरंकुशता इन्हें भी नहीं छोड़ती। हिंसक-युग की मनोवृत्ति शांति के युग में भी प्रबल हो जाती है। ५ जनवरी को पटना में जो गोली-काण्ड हुआ उसकी प्रतिक्रिया गणतंत्र-दिवस के अवसर पर इस प्रकार हुई—

विचारों के काले ध्वंसावशेष पर बैठा हुआ
मैं भिन्नमर्मा युग हूं
मेरे विद्ध-व्रणित शरीर का अंग-अंग
आंख बन गया है
जिसमें कोई भी उस दुनिया को देख सकता है
जो संगीनों की नोक पर खड़ी है
और उन गहराइयों में गड़ी है
जहां जाने में सूर्य हिचकता है

मैं भिन्नमर्मा युग हूं
मैंने कभी सोचा था कि मैं स्वाधीन हूं, मुक्त हूं
अपने में आरोपित किया था उन तारों को
जो चिल्लाते हुए लड़कों की तरह
आसमान के तंबू को उखाड़ फेंकते हैं
और दिशाओं के स्तम्भ में
स्वतंत्रता की पताका बांधकर फहराते हैं
आंधियों में गाते हैं।
आज अनुभव करता हूं कि
आशाएं झूठी हैं
कल्पनाएं रूठी हैं
मैं अब भी बंधन-युक्त हूं

हतप्रभ शरीर जो सामने पड़ा है, वही सत्य है
डूबती हुई साँसों को रोक कर जो मृतक है, वही सत्य है
दर्द की चुप्पी में जो आँसू जड़ा है, वही सत्य है

और कहता हूँ—

ये लाल-लाल फूल तुम्हें समर्पित हैं
हे मेरे देवता !
इन्हें अप्राप्तजन्मा अधिपतियों के
मुकुट का आनन्द मत बनने देना
इन्हें अजात अंधकार की प्रशस्ति का
असृग्लिप्त छंद मत बनने देना

(आर्यावर्त : २६—१—६७)

एक गंभीर व्यापार जिसे हम अस्तित्व कहते हैं। क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं की एक लम्बी शृंखला, जिसे हम स्थिति कहते हैं। अपेक्षा एवं संप्रतीक्षा जिसे हम निर्वाह कहते हैं। साधन, सज्जीकरण तथा सिद्धीकरण जिसे हम जीवन कहते हैं। और यह जीवन चैतन्य के रूप में समय की धार पर नाचता रहता है। नित्यगति, नित्ययौवन सदानन्द। विश्व की कल्पना में उद्भासित। यथार्थ। समीचीन। इसी भाव को लेकर मैंने ३०—१—६७ को एक गीत लिखा

सृष्टि पुरातन, तुम नवीन हो

यही गीत 'शुभ्रा' का प्रथम गीत बना और यही 'शुभ्रा' की कहानी है। २६—८—६७ के बाद का कोई गीत इसमें नहीं दिया गया है।

जीवन दो खंडों से बना है। वह जो बीत गया अर्थात् एक स्वप्न। और वह जो आने को है अर्थात् एक इच्छा। स्थितियाँ तीन खंडों में विभक्त हैं—जो था, जो है और जो होने को है। सृष्टि, कल्पना और प्रत्याशा। स्वप्न, प्रवृत्ति और इच्छा। 'शुभ्रा' में जीवन के दोनों खंड तीन में विभक्त होकर अभिव्यक्त हुए हैं। अभिव्यक्ति का स्वर, जैसा ऊपर कह चुका हूँ, षष्ठि-पूर्ति की आशा का स्वर रहा है।

जहाँ तक संगृहीत गीतों का प्रश्न है, इतना ही निवेदन कर दूँ कि मैंने सम्पूर्ण अपने को इनमें भर देने की कोशिश की है। फलतः जो कविता सृष्ट हुई है वह सिर्फ कविता है, उससे भिन्न कुछ नहीं। कविता, जैसी पहले हुआ करती थी और जैसी भविष्य में भी होगी। और मैंने ऐसा कुछ नहीं किया है जो उससे भिन्न हो जो पहले किया जा चुका है।

कविता को मनोविश्लेषण अथवा मनोविज्ञान मान लेने की भूल कर बैठने की इच्छा हुई तो सोचा कि अनेकानेक समस्याओं से उत्पीड़ित रहने वाले कवियों के लिए

जो कुछ शुद्ध आत्म-परक है उसे पार कर जो वस्तु-परक है उसमें उसे पूर्णत्व देना कितना कठिन काम है। मनोविज्ञान का दामन पकड़कर प्रचार यहीं कविता से अलग खड़ा हो जाता है।

मैंने ऐसा अनुभव किया है कि संगृहीत गीतों की पंक्तियों में एक आन्दोलन है, एक कंपन है। किसी में मस्तिष्क का, किसी में हृदय का, किसी में दोनों का सम्मिलित ताल है। अर्थात् कहीं मस्तिष्क हृदय के माध्यम से बोल रहा है, कहीं हृदय मस्तिष्क के माध्यम से। कहीं दोनों का सम्मिलित स्वर सुनाई पड़ रहा है। किसी भी गीत के लिए ऐसी सान्ध्वनिकता अपेक्षित है। तभी वह सार्थक होगा।

कुछ गीत ऐसे भी हैं जिनकी पंक्तियाँ जब गुनगुनाता हूँ तब अनुभव करता हूँ कि मन में अनेक प्रकार के बाजे मिलकर समस्वर उपजा रहे हैं। कह नहीं सकता कि गीतों की धड़कती हुई पंक्तियाँ बज रही हैं या एकान्त की साँस या वह तन्मयता जिसकी आँखें उस आवाज को भी सुन लेती हैं जिसका प्रत्यक्ष अस्तित्व नहीं होता, किन्तु जो हर्ष-शोक, आशा-निराशा की घड़ियों में स्वतः गूंज उठती है।

मैं उसी को गीत मानता हूँ जो अभ्यंतरेण गाया जा सके। प्रकृति के रू-बरू बैठकर इस प्रकार गाया जा सके कि लहरें बनें, उठें, फैलें लेकिन टूटें नहीं। हाँ गाया जा सके; लेकिन उस प्रकार नहीं जिस प्रकार कवि-सम्मेलनों में सुकंठ कवि गाते हैं। बल्कि जिस प्रकार निभृत एकान्त में बैठकर कोई अपने से बात करता है।

इलावर्त,
रामकृष्ण एवेन्यू, राजेन्द्रनगर
पटना–१६

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'
२–९–६७



प्रथम पंक्तियाँ



शुभ्रा

आमुख

ऊँचे ज्वारों पर किरण एक आ गई और

टहनी-टूसे फिर लहक उठे

वेला - बालू - कण दहक उठे

पर्वत - टीले - कंदर - कछार-

वापी - तड़ाग फिर गहक उठे

बंदनवारों पर किरण एक छा गई और

इन साँसों में कितना पराग

हर धड़कन एक भविष्य - राग

जब - जब पुकारता है पावस

ऐसा लगता कि न बुझी आग

हिय की डारों पर किरण एक गा गई और



सृष्टि पुरातन तुम नवीन हो

कण हो तो क्या हुआ, करण हो
व्रण हो, क्षणिक नहीं, अमरण हो
विश्व-कल्पना में उद्भासित
तुम यथार्थ हो, समीचीन हो

हे अविजित प्रतीक प्रत्यय के,
तुम्हीं समावर्तन में लय के
आयु - विहंगम के पंखों पर
स्वयंदीप्त - सा समासीन हो

•

अलग - अलग दीपक जलते हैं
दीपक बहुत, प्रकाश एक है

ज्वारित गगन, साँझ गदराई
सुध खो बैठे जब सुध आई
चले विहंगम पर फैलाकर
अयन बहुत अधिवास एक है

दृष्टि ज्योति पर केन्द्रित कर लो
जहाँ शून्य, शाश्वत से भर लो
जीवन में सँग - सँग चलने को
श्वास बहुत विश्वास एक है

तीन

पल - पल हिल्लोलित सूर्य - नीर
मैं स्मरण-तरण उत्तरण - कीर

पंखों पर ले क्षितिजावकाश
मैं गाता हूँ सुनता प्रकाश
ऊँचाई छूती अम्बर को
अम्बर निहारता सागर को
सागर पृथ्वी को सिक्त करे
पृथ्वी सब को अभिषिक्त करे

अभिषिक्त गीत का - सा शरीर
मैं स्मरण - तरण उत्तरण - कीर

पृथ्वी पर खिला, पला जीवन
पृथ्वी अभिव्यक्ति, कला जीवन
पृथ्वी से सिंचा - सिंचा जीवन
पृथ्वी झंकार, ऋचा जीवन
पृथ्वी सनेह जलता जीवन
पृथ्वी संबल चलता जीवन

जीवन गति - गत - स्वर - सुराभीर
मैं स्मरण - तरण उत्तरण - कीर

•

चार

क्या मिला मुझे कह दो न प्रान

मैं आज मिटाना चाह रहा भय और अनिश्चय का विधान

क्षण-क्षण बटोर कर मौन बना

कण-कण बटोर कर कौन बना

यह संध्या जो पथ पर उतरी या वह आनेवाला विहान

फूलों की सुन जो छंद बना

शूलों का वह आनंद बना

फूलों-शूलों से बना न जो मैं बना उसी का उपादान

आगत में राग नहीं गत का

फिर भी व्रत यही अनागत का

तारों में आग लगेगी जब मैं ही गाऊँ निर्वाण - गान



पाँच

पग थके, पंथ कब थका

अरे मन, मत लहराना छोड़

मिलता प्रकाश का गढ़

पहले छिलता है चाम पथिक का

है बहुत रक्त देना बाकी

मत तन छिलवाना छोड़

श्रम की पगडंडी, सर्प नहीं,

पंक्तियाँ रुकी हैं पीछे

आँधियाँ गरजती हैं, गरजें

मत दीप जलाना छोड़

•

मैं एक वर्तिका अंधकार में दृष्टि की

आकाश धौंकता हवा अलक्ष्य कठाल में
लपटों की लय में विद्युज्ज्वाला नाचती
अविराम हथौड़ा समय चलाये जा रहा
आकृतियाँ बनतीं, नियति स्वयं को बाँधती

ज्वालामुखियों की लिपि में लिखा भविष्य है
सौन्दर्य प्रकट होगा भट्ठी से सृष्टि की

सात

ओ हरी दूब के गीत

लिप्सा तामस का वरण करे
नभ लौह-पंख अभिक्रमण करे
ज्वारित पृथ्वी को मरण करे
जीवन रौरव - अभिनीत

साँसें भी शोणित से लथपथ
लथपथ समीर, सौरभ का पथ
लथपथ इतिहास, समय का रथ
कण - कण क्षण - क्षण अपुनीत

तृण - तृण आरोही नियति - तंत्र
निर्मल निसर्ग नव मुक्ति - मंत्र
तुम भरो विश्व का हृदय-यंत्र
झंकृति ले स्वस्ति - प्रणीत

कर स्वर - तरंग से नई सृष्टि
ऊँचों को दो तुम नई दृष्टि
जिससे हो नूतन अमृत - वृष्टि
आलोक - लोक की जीत

•

तृण स्वल्प, अप्रचुर दर्भ, वसन हो कैसे
संतप्त धरा का नवीकरण हो कैसे

सूरज लटका है, लगता नख - विष्किर है
व्यंशुक विटपी की छाँह छदन हो कैसे

सन्नाटा छाया मृत्यु उतर आई है
ऐसा अवर्ष, मन हर्ष - मगन हो कैसे

झंझा की पायल नहीं सुनाई पड़ती
नदियों का यौवन - छंद - सृजन हो कैसे

विप्लवी वीर, विद्रोही बादल, आओ
सब पूछ रहे, उन्मथित गगन हो कैसे

•

नौ

छाया - तन कि पराग है

क्षिति के ऊपर क्षितिज किनारे
अणु उड़ते हैं, उड़ते तारे
जीवन भी उड़कर आया है
यह आँधी का राग है

ज्योति ज्योति को खींच रही है
साँस साँस को सींच रही है
तुम कहते हो मृत्यु जिसे
वह बहुत पुरानी लाग है

फूलों की छवि को तन देती
ज्वारों को जो स्पंदन देती
सच कहता हूँ, वह कविता तो
भीतर केवल आग है



फूलों से फूटी ज्वाला
वाटिका सजी जैसे सुयौवना बाला

आगमन आग का, काया में
अनछुई शिखाओं का मुकुलन
छवि के अंचल की छाया में
अलका है या छलका वसंत का प्याला

स्वर बन बँसवारी टेर रही
जा - जाकर दूर, सुदूर हवा
नूतन संदेश बखेर रही
सपनों ने अपने को दृग - दृग में ढाला

•

ग्यारह

ओस से मन धो रहा तरु - पात

शून्य वन का हृदय शुभ्र प्रपात
याद करता यूथिका की रात
ओस से मन धो रहा तरु - पात

कुछ सलज्ज प्रगल्भ कुछ मधुवात
या कि रस में परस का अनुपात
ओस से मन धो रहा तरु - पात

लग रहा आकाश गंधस्नात
सृष्टि का उच्छ्वास गंधस्नात
ओस से मन धो रहा तरु - पात

•

पाती लिखती है

हरे बाँस - वन में है जाती
पत्तों पर कुछ भाव सजाती
हँसती और कभी सकुचाती
क्या रहस्य है, कुछ न बताती

नाम न कोई, पता न कोई
तो भी चुप - चुप लौ उकसाती
कैसी दिखती है
पाती लिखती है

तेरह

धार पर कुछ फूल हैं, कुछ दीप, कुछ जलयान
ग्रंथि खोलो प्रान

धड़कनों की छाँह में रीता हुआ मैं
जन्म क्या जाने कि हूँ जीता हुआ मैं
मरण क्या जाने कि मैं किसका समर्पित गान
ग्रंथि खोलो प्रान

साँस यह मौलिक नहीं, अनुवाद - भर है
और यह अस्तित्व, भटकी याद - भर है
और मैं वह मेघ जिसके पंख हैं तूफान
ग्रंथि खोलो प्रान

•

धीरे - धीरे नाच, उड़ती धूल है

पीपल बजता
सेमल सजता
हवा लुटाती कोष है
सारा जग वेहोश है
लहरें छू - छूकर उकसातीं
विह्वल वेलाकूल है
धीरे - धीरे नाच, उड़ती धूल है

छलके प्याला
फूटे ज्वाला
सरसों के शृंगार से
बँसवारी के ज्वार से
फूल बाँटता मादक सौरभ
कली वन रही फूल है
धीरे - धीरे नाच, उड़ती धूल है

नाच नवेली

नाच, नाच तू अयी शिखरिणी
अयि यौवन - कछार की हरिणी
दीप - शिखाएँ साथ नाचतीं
तू न अकेली अयि, अलबेली
नाच नवेली

अंग - अंग में तुझे निहारूँ
हर तरंग से रूप पखारूँ
अयि वसंत - यामिनी अनावृत
तू न पहेली, मैं न पहेली
नाच नवेली

•

गायक ! नया पराग लो

नीला - नीला नभ तारों का गाँव है
नीली - नीली झील निरातप छाँव है

टेर रहे हो क्यों तुम अनगिन किरणों को
एक किरण में नये गीत का राग लो

समय अँगीठी फूँक रहा वातास से
धुआँ उठा है इसीलिए आकाश से

हेर रहे हो क्यों तुम अनगिन किरणों को
एक किरण में नये गीत की आग लो



सत्रह

वर्षा चलती धीरे - धीरे रात में
जैसे दुलहन चलती है बारात में

जुगनू की टिकली माथे पर सोहती
झुकी - झुकी - सी चितवन मन को मोहती
घूँघट मेघों की अलबेली छाँह का
तनिक सहारा पुरवैया की बाँह का

सब हैं रस से ओतप्रोत जमात में
वर्षा चलती धीरे - धीरे रात में

पाँवों के नीचे बिजली के फूल हैं
स्वागत को अनगिनत बावले कूल हैं
शैल - शिखर चंचल - अंचल को चूमते
शून्य रंध्र से गीत निकल कर झूमते

ज्वारें उठतीं बार - बार तरु - गात में
वर्षा चलती धीरे - धीरे रात में

•

नींद की मछलियाँ खेलतीं धार पर

स्वप्न - शैवाल से कुछ निकलतीं उधर
कुछ मचलतीं वहाँ, कुछ बिछलतीं इधर
कुछ अतल को हलोरें किरण - पुच्छ से
कुछ दिये - सी जलें शुक्ति - शृंगार पर

कुछ चपल - रश्मियों से उभरती चलें
दूधियां चाँदनी में सँवरती चलें
सुप्त संज्ञा जहाँ कौंधती कुछ वहाँ
कौंधतीं बिजलियाँ ज्यों हवा - तार पर

कुछ रहीं चुन समय के झड़े पंख जो
कुछ रहीं चुन सितारों - जड़े पंख जो
बीच जल के गिरे जो अचल लड़खड़ा
कुछ उछालें उन्हें चञ्चु - पतवार पर
नींद की मछलियाँ खेलतीं धार पर

•

उन्नीस

अलग - अलग वृक्ष खड़े
अश्रु-हास और रुदन-गीत गिन रहे

एक लहर फूल से उठी
एक लहर कूल से उठी
लहर चली साथ लहर के
त्वरित और ठहर - ठहर के
अलग - अलग वृक्ष खड़े
ग्रीष्म, वर्षकाल और शीत गिन रहे

एक आग खेत से उठी
एक आग रेत से उठी
आग जले साथ आग के
राग चले साथ राग के
अलग - अलग वृक्ष खड़े
ह्रास-वृद्धि और बैर-प्रीत गिन रहे

एक ज्वार आर से उठी
एक ज्वार पार से उठी
ज्वार चले साथ ज्वार के
तार बजे साथ तार के
अलग - अलग वृक्ष खड़े
जन्म-मरण और हार-जीत गिन रहे

●

बीस

सिन्धु को रात ने फिर बजाया नहीं

गूँजती रह गईं नींद की घाटियाँ
गूँजते रह गये स्वप्न के छोर भी
गूँज कर एकटक देखते रह गये
पर्वतों के सुरभि - सिक्त हिलकोर भी

कौंधकर बिजलियों ने कहा सानुनय
रूप फिर आँधियों ने सजाया नहीं



इक्कीस

झूम - झूम कर वृक्ष झील में झाँकते

स्मारक लिखते हो तुम किस शृंगार के
मैं तो उतरा था पथ पर अंगार के
अक्षर चुन - चुन कर अभिषिक्त पुकार के
दीप जलाता रहा मरण - त्योहार के

देखो, जल का मौन बटोर - बटोर कर
तारे सिकतिल बिम्ब कूल पर आँकते

•

बाईस

जब-जब तुम अपने को देखो, मैं दिखूँ

सूखे पत्तों के भीतर की आग लूँ
शेष रश्मियों का अवशेष पराग लूँ
अनदेखे गिरि - शिखरों पर की ओस लूँ
सूर्योदय के पहले का उद्घोष लूँ

और समय के जितने पृष्ठ निरंक हैं
सब पर साँसों का अनगाया स्वर लिखूँ

●

तेईस

मुझे खुला रहने दो

बार-बार आवरित करो मत
अपने मन का अर्थ भरो मत
परिमल कौन, पराग कौन - सा

आग - धुला रहने दो

वरण दे रहा मरण - प्रतिष्ठा
चरण - चिह्न पहचाने निष्ठा
उसे नहीं चाहिये नई

अभिधा, अकुला रहने दो

•

हे तरुवर ! हे तपः पूत तन !
तुम न ग्रंथ, पर तुम्हें पढ़ूँ मैं

हे विचार स्वर - लय से संयुत
अंकुर थे, अब गगन छू रहे
डाल - डाल से, पर्णा - पर्णा से
तप्त भूमि पर प्राण चू रहे

शिखर - शिखा लिपि बादल अक्षर
दिशा - दिशा के गीत गढ़ूँ मैं

पचीस

समय से टूट कर गिरता समय है

अँधेरे में सरोष प्रमाद बोले
कगारों पर खड़ा उन्माद बोले
हवाएँ चुन रहीं अंगार जलते
दबी-सी सिसकियों में याद बोले

युगों से हृदय-निष्कासित हृदय है

विहग सौन्दर्य का कुछ गा रहा है
हिलोरों पर बुलाने आ रहा है
चकित ज्योतिष्क पथ के देखते हैं
किधर मस्तिष्क भागा जा रहा है

लहर से तीर का मिलता न लय है



सागर की उजली नींद धरित्री सोई है

गीली - गीली - सी रात लताएँ झुकी - झुकी
गीले - गीले तरु - पात हवाएँ रुकी - रुकी

निर्झर - नादित गिरि - पंक्ति मयूखों - धोई है

ओसों की कज्जल झील चाँदनी छलक रही
कंपित तारों का फेन कि रजनी ललक रही

सपनों का मृदु - मृदु चरण सिहरती पोई है

फैली सुदूर तक रेत राजिका सिकता की
मैं उड़ता पंख पसार खोज - खग एकाकी

हिलकोरूँ मरु - प्रदेश कि कविता खोई है

•

सत्ताइस

अस्थि - भवन में कीर बसा है

किरण - किरण से स्वर उपजाता
इरण - इरण में रस सरसाता
देह छोड़ तट - बंध तोड़ कर
छंद आँधियों का जो गाता

सीमाओं के परिवेष्टन में
वह विश्वास - प्रवीर बसा है

उँगली पर नभ लिए रहा जो
लपटों का मधु पिये रहा जो
अपने में अद्भुत अलबेला
हँस अकेला हिये रहा जो

अरणि और तिनकों के वन में
वह दावाग्नि सुधीर बसा है

पथ जो पंथ - हीन सागर में
पथिक अभय विक्षुब्ध प्रहर में
प्लावन में प्लव पोत अतल में
पोत - प्लव संक्रान्ति - लहर में

मेरा प्रकृति - स्वभाव जयी वह
चयी समय के तीर बसा है

•

त्वचा आग है
यह पंजर जो रचा, आग है

सुधा चाहते, शांति कहाँ है
कला चाहते, कांति कहाँ है
क्षमा चाहते, क्षांति कहाँ है
जग में जो कुछ बचा, आग है

देखा मैंने मानव जलता
देखा फूलों का शव जलता
देखा भावों का भव जलता
तुम्हें गीत जो जँचा, आग है

•

उनतीस

न पन्ना उलट कर पढ़ा या विलोका
न रुक कर पुकारा, न पूछा, न टोका
किनारे पड़ा मैं रहा

परत पर परत ज्योति तुमने सँजोई
बड़े प्रेम से एक धड़कन जुगोई
तिमिर में गड़ा मैं रहा

इधर से गया जो समय का हिरण था
कुतरता नवल - वर्ण जीवन - विरण था
अहेरी खड़ा मैं रहा

•

तीस

नदी - किनारे स्वर बिखरे हैं

अंतरिक्ष के आगे संगम
उधर यहीं से गये विहंगम
देख रहा हूँ, दूर - दूर तक
टूट - टूट कर पर बिखरे हैं

अँजुरी में जितने बालू - कण
लुटा दिये उतने जीवन-क्षण
जितने जीवन - क्षण दे डाले
उतने हस्ताक्षर बिखरे हैं

सिकतिल शून्य लहर को खोजे
लहर प्ररोह - प्रहर को खोजे
मैं गीतों के घर को खोजूँ
जहाँ काल के शर बिखरे हैं



इकतीस

संध्या का सन्नाटा बाँटे पत्र

कंपित दीप-शिखा पट खोले

नभ का अच्चर-अच्चर बोले

गगन-मगन मन, विहग-विहग एकत्र

•

बत्तीस

तुम नवीन रश्मि सखि ! नवल राग हो,

तुम तरंग जो कि सिन्धु बीच नाचती
तुम अनंग - बेलि रूप - पत्र - बाँचती

लहक नये पुष्प की, नव पराग हो

गीत भरूँ रात - भर निर्झरी ! रुको
परछाँई बाँध लूँ तनिक तुम झुको

भटक रहा सूर्य तुम उषा - आग हो



तुम सागर हो, मैं ज्वार तुम्हें दूँगा

मेरे गीतों को साँझ चूमने आई
मैं देख रहा तरु-शिखरों की पियराई

बोलो, बोलो, इन आँखों से छलकोगे
तुम आतप हो, जलधार तुम्हें दूँगा

मझधार और दोनों तट हाथ हिलाते
वे नखत, अग्नि-जन, धुँधले दीप जलाते

नाविक बन जाओ, आओ, आओ, आओ
तुम प्लावन हो, पतवार तुम्हें दूँगा

•

चौंतीस

जहाँ प्यार है वहाँ दिखे न मरण

पृथ्वी मसृण प्रकाश वहाँ है
दीप एक विश्वास वहाँ है

पुष्प - ज्वार पर उठते छंद - चरण

अमृत - बूँद से धौत अनाविल
अक्षर - अक्षर कण-कण तिल - तिल

लता - वृक्ष वन - उपवन निरावरण



पैंतीस

इन्द्रधनु मेघ के दीप की लौ बना

आग रंगीन शिल्पित हुई ज्वार पर

धूप चुप-चुप खड़ी छाँह के द्वार पर

भूमि से व्योम तक एक रेखा खिंची

एक ही बिम्ब था, एक से सौ बना



छत्तीस

बोले, क्यों बोले त्वरा, चला मैं

मरुभूमि उर्वरा, यह कैसे
अक्षर-अक्षर विजडित ऐसे
जैसे नभ तारों-भरा, चला मैं

सुषमा, पराग, ज्वाला देकर
रसमयी मेघमाला देकर
देकर गीतों को धरा, चला मैं

मानव की परंपरा मानव
मानव की शक्ति परा मानव
मानव-धृति विश्वेश्वरा, चला मैं



सैंतीस

ज्योति को दुख ने किया पावन

सूर्य कण-कण रक्त से सींचा
समय का रथ रथी - सा खींचा

प्लव बना पथ, पथ बना प्लावन

एक उद्‌बोधन, खुले तारे
एक आश्वासन, बिना हारे

चल पड़ा है, चल रहा जीवन

•

तरु - तरु पिपासु, तरु - तरु कृश - तन

आये बादल, पर रुके नहीं

जीवन देने को झुके नहीं

गूँजीं न घाटियाँ, वन - कानन

संध्या लगती कि दुपहरी है

संक्रांति अभी तक ठहरी है

आकाश, दिशाएँ, धुआँ - धुवन

आँखें आँखों की बात सुनें

सारा दिन सारी रात गुनें

तृण - तृण अधन्य, तृण - तृण निर्धन

●

उन्तालीस

जब जीवन के अंक मिला लूँ
अंक मिटाना

सपनों को सपनों से भरना
वलयित मुझे क्षितिज से करना

मेरी चारो ओर उपग्रह
नये बसाना

मेरी साँस अक्ष पर बुनना
मुझे ज्योति के स्वर में सुनना

नये वृक्ष बो वातावरण
नवीन बनाना

जब स्वप्न तुम्हारे भाग गये, मैं आया

मत कहो, शून्य का तारा हूँ
विश्वास करो कि तुम्हारा हूँ

छूकर तुम अनुभव करो कि कैसी काया

पृथ्वी का दीपक जले - बुझे
पृथ्वी में देखो - सुनो मुझे

पृथ्वी के शाश्वत स्वर में मैंने गाया

आवश्यक हूँ, स्वीकार करो
तत्वत्तः मिलूँगा, प्यार करो

मैं हूँ यथार्थ का दूत, न सूनी छाया

•

इकतालीस

गगन के वक्ष पर बैठा हुआ मैं
अनाविल शुभ्रता में स्नान करता
हवाओं के कलश का रस उझलकर
छलकती रश्मियों से पुनः भरता

विहग-सा मैं अनल चुगता शिखर पर
दिशाओं के दृगों में जगमगाता
अँधेरे में लहकतीं ऊर्म्मियाँ जो
सँपेरे-सा उन्हें बाहर बुलाता

सिसकते श्वास को विश्वास से छू
पहाड़ी मूर्च्छना को मीड़ देता
अकेली निष्प्रतिभ चिनगारियाँ जो
उन्हें मैं आँधियों की भीड़ देता

लुढ़कता चाँदनी का ज्वार पीकर
सनेही नखत अपनी छाँह देते
छबीली रात को मैं बाँध लेता
अनावृत वृक्ष अपनी बाँह देते

क्षणों में ही बलाहक के परों से
पयोनिधि को उठाकर फेंक देता
नये जल की नई गहराइयों में
बिना पतवार के मैं नाव खेता

•

मैं तो सूरज तक पहुँचूँ हिम-शिखर न पहुँचे

हवा बोलती, बोल न पाती
खुले कंठ को खोल न पाती

नीरव गीत जहाँ तक पहुँचे, मुखर न पहुँचे

सागर या सिकता एकाकी
सागर चुका कि सिकता बाकी

मन ही पहुँचे, मन न मगन तो लहर न पहुँचे



तेंतालीस

वर्षा बनकर आओ प्राण ! मुझे नहला दो

उतर तुंग शृंगों पर टेरो

तरु - शिखरों पर मेघ बखेरो

विद्युत् बन कर आओ गीतों को सहला दो

सारा दिन रीता लगता है

हारा - सा जीता लगता है

बूँद - बूँद में मुझे उडेलो, मन बहला दो

सिन्धु लोटता बालू - कण पर

समय खड़ा है एक किरण पर

फिर हो जाऊँ सराबोर सावन पहला दो



तुम्हारी हँसी से धुली घाटियों में
तिमिर के प्रलय का नया अर्थ होगा

अनल-सा लहकते हुए तरु-शिखर पर
किरण चल रही या चरण हैं तुम्हारे
सुना है, बहुत बार अनुभव किया है
सुरों में तुम्हें रात भू पर उतारे
तुम्हारी हँसी से धुले पर्वतों के
धड़कते हृदय का नया अर्थ होगा

तुम्हारा कहीं एक कण देख पाया
तभी से निरन्तर पयोनिधि सुलगता
कहीं एक क्षण पा गया है तुम्हारा
तभी से प्रभंजन अनिर्बन्ध लगता
तुम्हारी हँसी से धुली क्यारियों में
छलकते प्रणय का नया अर्थ होगा

अहो, तुम वही गीत जनमा नहीं जो
जिसे चूम पृथ्वी लजीली बनी है
अहो, तुम वही स्वर अकल्पित रहा जो
जिसे साँस पाकर सजीली बनी है
तुम्हारी हँसी से धुले रश्मि-पथ पर
चमकते उदय का नया अर्थ होगा

●

पैंतालीस

रात के खेत का स्वर सितारों-जड़ा

वीचियों में लुढ़कती हुई झील के
दीप सौ - सौ लिये चल रही है हवा
बाँध ऊँचाइयाँ पंख में राजसी
स्वप्न में भी समुद्यत सजग है लवा

राह में छवा सृजन का कहीं है पड़ा

व्योम लगता कि लिपि - बद्ध तृणभूमि है
चाँदनी से भरी दूब बजती जहाँ
व्योम लगता कि हस्ताक्षरित पल्लवी
पंखवाली परी ओस सजती जहाँ

ओढ़ हलका तिमिर शैल प्रहरी खड़ा

•

छियालीस

मैं विहंग हूँ
पंख न केवल

बाँहों में बाँधो काया को
संज्ञायित कर दो छाया को
तुम उज्ज्वल धड़कन प्रकाश की

मैं समुद्र हूँ
शंख न केवल

●

सैंतालीस

ये तुषार - कण

गिरि - शिखरों पर इन्द्रधनुष के
उतरे हैं शत - शत पंखिल क्षण

झुकी प्रार्थना हरी घास पर
ढुलकाती मोती प्रकाश पर
किरण - किरण के हेम - हास पर

इतने लोक श्लोक के अमरण

•

क्षमा, न जीवन क्षति है

पुनर्मिलन है किरण-किरण का
शिविर - वह्नि है इरण - इरण का

गति है, गति है, गति है

मरण नहीं कविता का पथ है
छंद साँस है, साँस न श्लथ है
यति पर रुकी नियति है

•

उनचास

रेखा जो खींची, रेखा है

ध्वनियों और प्रतिध्वनियों में
भरे क्रमण-कण छोड़ लीक पर
ऊँचे शिखरों की ज्वाला में
जीवन उगता है प्रतीक पर

सौ-सौ सूरज, एक पाँखुरी
साँसों ने सींची, देखा है

•

पचास

पूनम का चंद्रमा झुका है

शून्य कि शुभ्र पुष्प झरता है
गगन कि सुधा - कलश भरता है
लगता है सौन्दर्य - मोह से
समय - सारथिक तनिक रुका है

फेनोज्ज्वल उष्णीष पहन कर
निर्निमेष दृग कृषक चक्रधर
देख रहा है दूर - दूर तक
तम का शूकर कहाँ लुका है

•

इक्यावन

वर्षा के कण - कण में अयुत मयंक हैं

हवा उँगलियों से वृक्षों को छू रही
पत्तों से छन कर पृथ्वी पर चू रही
संध्या के दीपक की लौ चुप डोलती
बादल से, फिर बूँदों से कुछ बोलती

जितने हैं अनछुए गीत सौन्दर्य के
नदियाँ - सागर उनके निरवधि अंक हैं

•

तुहिन वर्षा संध्या जूही की आग से

कंपित पत्र गिरे डाली से
छलके या स्फुलिंग प्याली से

खचित भूमि अनछुए अनसुने राग से

छाया - छाया जहाँ सिक्त है
जहाँ पवन का रंध्र रिक्त है

आज मुझे कोई लिख गया पराग से

•

तिरपन

मैं न मिला अपने को जीत में

शब्द गढ़े मेघों के छोर पर
चित्र गढ़े सिन्धु की हिलोर पर
नाम लिखा सीपी पर, शंख पर
ठाँव लिखा पल - छिन के पंख पर

अर्पित हूँ, आँसू को गीत में

•

भुजंगों से घिरी हूँ, मैं नियति हूँ

तिमिर का रंध्र है मेरा बसेरा
तिमिर से पोछ वपु झलका रही हूँ
भुजाओं में मुझे लो बाँध, आओ
अदेखा रूप - रस छलका रही हूँ

लुटाती हूँ अतुल सौन्दर्य शोभा
लुटाती हूँ अतुल सौभाग्य, रति हूँ
भुजंगों से घिरी हूँ, मैं नियति हूँ

तिमिर के फूल मैं जिस ठौर चुनती
वहीं प्रतिनिमिष पल संसार बनता
तिमिर में मैं जहाँ साँसें सँजोती
वहीं आकृति, वहीं आकार बनता

नया सूरज उगा दूँ रक्त - सींचा
पुकारो तुम कि मैं छन्दानुगति हूँ

●

पचपन

उषा के स्पर्श का उन्माद

ढोते रात के बादल

फुहारों में छिड़कती है हवा सीकर बकुल - कुल का

सुरभि की शिंजिनी का नाद

ढोते रात के बादल

कली का अनखुला संदेश ढोती है नदी वन की

कुसुम का अनसुना संवाद

ढोते रात के बादल

उँगलियों ने लहक छू लों छुआ जब छोर आंचल का

प्रतिक्षण वह लहकती याद

ढोते रात के बादल

●

मस्तिष्क भरा तूफान से
तो गान बने कैसे

धरती को देते रक्त, रक्त को देते ज्वाला - कण
बो रहे घृणा के बीज द्वेष से सींच - सींच चण - चण

विष फूलों को भी पिला रहे
मुस्कान बने कैसे

झकझोर रहा है अविश्वास दिनरात विचारों को
पहले - जैसा छू पाते हैं अब नहीं सितारों को

लुट गई हृदय की पवित्रता
आह्वान बने कैसे

●

लहलहा रहा सावन का कुश

कुछ नीर और कुछ नीरज - रज
कुछ रश्मि - राग, कुछ गंध - स्रज
कुछ चातक रव सुध जिसकी व्रज

संज्ञायित करते काव्य - पुरुष

ऐसा लगता कोई उच्छिख
मेघों का ले सौन्दर्य - विशिख
चुपचाप मुझे देता है लिख

मैं बन जाता हूँ इन्द्रधनुष

•

झुक - झुक छाया को उठा रही तरु - डाल

पृथ्वी विचार, केवल विचार

तम समर उगलता धुआँधार

बुझ जाता दीपक बार - बार

तब फूलों का मन अमृत, प्यार

बरसाता है कण - कण पवित्र मधु ज्वाल

उनसठ

झरते हैं जूही के तारे

संध्या लिपटी है पराग से
पृथ्वी सारी धुली आग से
एकाकिनी अदेखी शोभा

देख रही कुछ नदी - किनारे

अरी बावरी ! तू समर्पिता
रात आ रही बन जा कविता
हिलकोरों में मृदु समीर के

सस्वर निरवधि समय पुकारे

•

चिह्न रक्त के मिले जहाँ भी
मारुत धोता रहा रात-भर

मानव-मन के अंतरतम में
समर छिड़ा जो, नया नहीं है
हिंस्र वन्य पशु-सा आ बैठा
अंधकार जो, गया नहीं है

तारों को नीचे उतार कर
सागर रोता रहा रात-भर

मृत-सा पड़े पंक्ति में पर्वत
मृत-सा खड़े वृक्ष, पथ निर्जन
मृत-सा फूल लिखे डालों पर
यह भी एक अनोखा सिरजन

एक गीत हर दग्ध हृदय में
सपने बोता रहा रात-भर

महाकवि श्री केदार नाथ मिश्र 'प्रभात' की अन्य काव्य-कृतियां—

कर्ण

कर्ण की कथावस्तु पौराणिक है, किन्तु इसकी प्रेरणाभूमि अति आधुनिक है। कर्ण को समाज में सर्वत्र तिरस्कार मिला। दूसरे की भूल के कारण ही उन्हें सगे भाइयों के विरुद्ध हथियार उठाना पड़ा। कवि के शब्दों में "चूंकि महावीर कर्ण के जीवन का करुण पक्ष मुझे अत्यधिक प्रिय है, वह अनायास इस काव्य का आधार बन गया।" दोरंगा आवरण पृष्ठ, सुन्दर छपाई।

तप्तगृह

"तप्तगृह" की कथावस्तु ऐतिहासिक है; किन्तु इसकी प्रेरणाभूमि अति आधुनिक है। आधुनिक मनुष्य अपनी प्रभुसत्ता के लिए अणुबम गिराकर लाखों की हत्या करने में कोई संकोच नहीं करता। इसी संदर्भ में 'तप्तगृह' की रचना महाकवि ने की है।

कैकेयी

"सम्पूर्ण प्रबन्ध कैकेयी की अभिनव चरित्र-कल्पना पर आधृत है। कैकेयी का नवनिर्मित एवं सुष्ठु-विकसित व्यक्तित्व ही सारे काव्य का प्राणतत्व और मौलिक उपादान है। नारी का ऐसा उदात्त चित्रण विश्व-साहित्य के इतिहास में दुर्लभ है।"

ऋतंवरा

"ऋतंवरा ही काव्य में दर्शन है और दर्शन ही काव्य है। मननशील मानव जाति के चिन्तनशील, भावुक और प्रज्ञावान हृदय और मस्तिष्क का जैसा विलक्षण चित्रण 'ऋतंवरा' में हुआ है, यह हमारे काव्य के सहस्राधिक वर्षों के इतिहास में दुर्लभ है।" बिहार एवं उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत।

समुद्यत राष्ट्र

यह पुस्तक हिन्दी-संसार के लिए महाकवि की नवीनतम देन है। राष्ट्रध्वज की वन्दना के माध्यम से रचनाकार ने राष्ट्र और मानवता का जयगान किया है। राष्ट्रीय एकता के लिए चेतना का पांचजन्य फूंका है। एक ही पुस्तक में हिन्दी और अँगरेजी भाषा में रचित काव्य का रसास्वादन कीजिए। कलात्मक एवं चित्रात्मक छपाई। तिरंगा आवरण पृष्ठ।

प्रकाशक

नवभारत प्रकाशन

दिल्ली—६ : खजांची रोड, पटना—४